

संसद की शिथिलता



कुछ दिनों पहले समाप्त हुए संसद के शीतकालीन सत्र की कार्यावधि काफी निराशाजनक रही। हमारी संसद के सत्र प्रारंभ होते हैं, लेकिन किसी उद्देश्य की पूर्ति के बिना ही समाप्त हो जाते हैं। उत्तरदायी सांसदों और अर्थपूर्ण कानून के अभाव की परिणति अध्यादेशों में होती है। यही कारण है कि जनता में संसद की छवि के प्रति अविश्वास सा पनपता जा रहा है।

✓ विरोधाभास कहां है?

आखिर जनता का क्या दोष ? विपक्ष का ध्यान सरकारी नीतियों की समालोचना करने की बजाय सरकार की निंदा में लगा रहता है। इस प्रकार की निंदा के प्रति सरकार उदासीन है। वह विपक्ष के बेतुके आरोपों का उत्तर देने की बजाय सीधे जनता-जनार्दन से अपनी बात कहना अधिक मुनासिब समझती है। जवाहरलाल नेहरू ने प्रजातंत्र की 'महिमा' के रूप में जिसकी व्याख्या की थी, वही संसद अब धीरे-धीरे अपवित्र सी होने लगी है। अच्छी बात यह है कि इतना सब होते हुए भी हमारी जनता का प्रजातंत्र से मोहभंग नहीं हुआ है। सर्वेक्षण दिखाते हैं कि भारतीय जनता के मन में प्रजातंत्र के प्रति घोर विश्वास है, क्योंकि यही वह तंत्र है, जो उन्हें समानता का अधिकार देता है। फिर चाहे यह समानता का सम्मान चुनावों तक ही सीमित क्यों न हो। सालों साल से हम यह देखते आ रहे हैं कि किस प्रकार चुनावों के माध्यम से जनता अपने उम्मीदवारों को अप्रत्याशित जीत या हार दिलवा सकती है।

दरअसल, भारतीय प्रजातंत्र की जीवनी ही जनता की राजनीतिक परिपक्वता में विश्वास को आधार बनाकर लिखी गई है। सन् 1928 में संविधान का मसौदा प्रस्तुत करते हुए पंडित मोतीलाल नेहरू ने स्पष्ट कहा था कि "हम जनता की निरक्षरता और राजनीतिक अनुभवों को कोई अहमियत नहीं देना चाहते। राजनीतिक अनुभवों के लिए राजनीतिक संस्थाओं में सक्रिय भागीदारी की जरूरत होती है, और सभी को समान रूप से इस अनुभव को प्राप्त करने का अवसर मिलना चाहिए।" संविधान सभा की इस मंशा को अधिक बल नहीं दिया गया।

18वीं शताब्दी के फ्रांस में रूसो ने सत्ता के संबंध में लिखा था कि 'यह तो सामान्य जन के हाथ में होती है। इसमें प्रतिनिधि जैसे किसी मध्यस्थ के लिये कोई स्थान नहीं होता।' रूसो का यह वक्तव्य प्रत्यक्ष प्रजातंत्र की ओर संकेत करता है। रोजी-रोटी की जुगाड़ में लगे समाज के लिए ऐसा

प्रत्यक्ष प्रजातंत्र व्यावहारिक नहीं हो सकता। प्राचीन एथेन्सवासियों से अलग आज के नागरिक अपनी निजी जिंदगी को भी बराबर का महत्व देते हैं और इसलिए आज के प्रजातंत्र में प्रतिनिधि जैसे मध्यस्थ की आवश्यकता है, जो नागरिकों और राज्य के बीच सेतु का काम कर सकें।

✓ प्रतिनिधि की भूमिका

किसी राजनैतिक समाज में नागरिक एक प्रधान ईकाई होता है, जबकि उसका प्रतिनिधि गौण ईकाई है। मतदाता उसे अपने एवज में बोलने और काम करने के लिए अधिकृत करते हैं। कोई भी प्रतिनिधि किसी व्यक्ति-विशेष की बात नहीं करता। उसे अपने क्षेत्र के मतदाताओं की जरूरतों के अनुसार निर्णयों की दिशा तय करनी होती है। प्रतिनिधि के लिए ऐसा करना गौरव की बात है। उसे अपने मतदाताओं का कृतज्ञ होना चाहिए कि उन्होंने उसमें अपना विश्वास दिखाया है और उसे उनके लिए नीति निर्धारण में शामिल होने के लिए चुना है। इस प्रकार एक प्रतिनिधि अपने क्षेत्र के सभी कामों के लिए जिम्मेदार होता है। जनता को अपने प्रतिनिधि को चुनने के अधिकार के साथ ही यह बताने का भी अधिकार होता है कि उनका प्रतिनिधि क्या प्रस्तावित करे। भारत में मीडिया, गैर सरकारी और सामाजिक संस्थाओं की भरमार है। प्रत्येक संस्था अपने सदस्यों के हितों को सर्वोपरि रखना चाहती है। इन सबके बीच एक राजनीतिक प्रतिनिधि को तीन तरह से लाभ मिलता है। एक तो वह एक सीमित क्षेत्र का प्रतिनिधित्व करता है। दूसरे, वह चुनावों के कारण अपने मतदाताओं के प्रति जवाबदेह होता है। तीसरे, उसका चुनाव वैध होता है।

जैसा कि रूसों ने कहा था, मध्यस्थ या प्रतिनिधित्व वाला प्रजातंत्र दोषपूर्ण हो सकता है, लेकिन जनता और राज्य को जोड़ने के लिए यही एक कड़ी है। यह प्रतिनिधि संसद में होते हुए भी अपने क्षेत्र के लिए ही खड़ा हुआ होता है। प्रतिनिधि का यही काम है। इसी काम को करने के लिए उसे चुना जाता है। यह कोई छोट-मोटा काम नहीं है, जैसा कि सुकरात ने प्लेटो के रिपब्लिक में व्यक्त किया है। संसद एक विचारशील संस्था है। इसे हल्के रूप में नहीं लिया जाना चाहिए। प्रतिनिधियों के माध्यम से किया गया कोई भी विचार-विमर्श हमारे जीवन जीने के तरीके का निर्धारण करता है। हमारी संसद से यही महत्वपूर्ण तत्व विलुप्त हो रहा है। लोगों के हितों के बारे में विचार-विमर्श न कर पाना निंदनीय तो है ही, संसद जैसी संस्था की विफलता का द्योतक भी है।

शीतकालीन सत्र में संसद का यही रूप देखने को मिला, जब कुर्सियां खाली पड़ी थीं, और कुछ एक उपस्थित प्रतिनिधियों के वक्तव्यों पर विचार-विमर्श करने वाले अन्य प्रतिनिधि नदारद थे। संसद की प्रभावशीलता में कमी सबसे ज्यादा चिंताजनक है। यह संस्था कार्यकारिणी के कार्यों पर नियंत्रण रखने में विफल रही है। और अब इसके प्रतिनिधियों और उनके कार्यों की शिथिलता से प्रजातंत्र की शक्ति कार्यकारिणी में केंद्रित होती दिखाई दे रही है।

अगर भारत को अपने प्रजातांत्रिक अस्तित्व को बनाए रखना है, तो सांसदों को यह समझना होगा कि लोगों के विचार, हित और जरूरतों का प्रतिनिधित्व करना उनका सर्वोपरि कर्तव्य है। 1957 के अपने भाषण में नेहरू ने कहा था कि इतिहास संसद में दिए गए भाषणों या पूछे गए प्रश्नों में लगने वाले समय को याद नहीं रखेगा। वह तो उन बातों को याद रखेगा, जिनसे राष्ट्र का निर्माण हुआ है। वर्तमान समय में भारत के करोड़ों इंसानों के भाग्य के जिम्मेदार हमारे सांसद अपनी महती भूमिका को गंभीरता से नहीं ले रहे हैं। यह हमारे प्रजातंत्र की दुखद त्रासदी है।

‘द हिंदू’ में प्रकाशित नीरा चंडोक के लेख पर आधारित।